# दूसरी औरत बनाम समाज की गैरत

विषय प्रवर्तन “संतोष श्रीवास्तव” संचालन सुरभि पाँडे और उनकी टीम

विश्व मैत्री मंच के साहित्यिक समूह में परिचर्चा का आयोजन।

मंगलवार दिनांक 13 दिसम्बर 2016 को आयोजित परिचर्चा की प्रस्तुति

इस विषय पर चर्चा की शुरुआत करते हुए संतोष श्रीवास्तव का कहना था-

दूसरी औरत कल भी थी ।आज भी है मगर कल की दूसरी औरत समाज में रखैल, तिरस्कृत, बहिष्कृत, लांछित पुरुष की इच्छा का मात्र खिलवाड़ या कभी किसी के जीवन की भावनात्मक शून्यता को भरने वाला अप्रकट निमित्त ही थी लेकिन कल की अधिकार वंचिता रखैल आज अपने लिए मनोवैज्ञानिक, सामाजिक, नैतिक एवं मानवीय पृष्ठभूमि पर नई परिभाषा चाहती है। आज वह अपने परंपरागत परिचय से अलग खड़ी अपनी पहचान की मांग ही नहीं कर रही बल्कि स्वयं गढ़ भी रही है और उसे दृढ़ स्वाभिमान के साथ परिभाषित भी कर रही है। पिछले वर्षों में दूसरी औरत बाकायदा चर्चा में रही। राजनीतिज्ञ, फिल्मी हस्तियां, मॉडल, लेखक , समाजशास्त्री,प्रवक्ता, चित्रकार, नाटककार, झोपड़पट्टी में रहने वाले या खेत में मजदूरी करने वाले। हर क्षेत्र,हर तबके में दूसरी औरत मौजूद है। मान्यता, पहचान और प्रतिष्ठा की लड़ाई में खड़ी दूसरी औरत कहीं तो घबरा कर हार मानने को तैयार है लेकिन अधिकांश है जो कमर कसकर समाज की थोथी मर्यादाओं और असंगत जीवन मूल्यों को चुनौती देती यह साबित कर रही है कि उनकी पहल न कहीं अनैतिक है न सामाजिक नियम, धर्म के प्रति उच्छृंखलता। वह इसे स्त्री स्वतंत्रता, संघर्ष और उसकी सामाजिक छवि की अन्वेषी भूमिका ही मानती है।

बरसों पहले धर्मयुग में इसी शीर्षक से परिचर्चा आयोजित की गई थी ।संपादक धर्मवीर भारती के संपादन में जो खुद दूसरी औरत की गिरफ्त में थे। इस विचारोत्तेजक परिचर्चा में जो प्रतिक्रियाएं आई उन्होंने यह तथ्य उजागर कर दिया कि किसी पुरुष के इस नाजुक मोड़ को परिभाषित करती बातचीत दुखती रग है ।

कहते हैं हर सफल पुरुष के पीछे उसे ऊंचाई तक पहुंचाने वाली एक स्त्री है तो क्या महान लेखक ज्यां पाल सात्र और सिमोन द बोउआर, फिल्म अभिनेता राज बब्बर और स्मिता पाटिल चित्रकार शिब्बू और प्रतिभा, समाजसेवक देव राज और अनिला जैसी जोड़ी इसी वजह से सफल हुए ?और क्या यह स्त्री मां, बहन या अन्य रिश्तो की स्त्रियां नहीं हो सकती ।कहीं ऐसा तो नहीं कि यह पुरुषों के लिए स्टेटस सिंबल है कि जैसे सामंती युग में राजा रजवाडे,रईस, सामन्त, तालुकेदारों के लिए रखैल सामाजिक प्रतिष्ठा का प्रतीक यानी स्टेटस सिंबल थी वहां न प्रेम था न लगाव बस स्टेटस सिंबल था।

आइए आज इन्हीं प्रश्नों पर विचार करें जिससे समाज सदियों से जूझ रहा है और औरत मिट रही है।

इस विषय पर सभी ने खुलकर भाग लिया और अपने अपने विचार रखे।

परिचर्चा का एक ज्वलंत विषय आदरणीय संतोष दी का एक तीक्ष्ण लेख। पढ़कर स्तब्ध रह जाना स्वाभाविक, क्योंकि ऐसा सोचना हमारे बूते का।

सामाजिक परिस्थितियां आज से नहीं सदियों से ऐसी हैं।स्त्री को कब बराबरी का दर्जा मिला है। स्त्री द्योतर ही रही है।

“दूसरी औरत ” एक विद्रुपित सत्य है समाज का देश काल स्थिति परिस्थिति चाहे कोई भी हो पुरुष अपने स्वार्थों के लिए दोहित करता आया है भ्रम जाल ये फंसा कर उसे।कभी समाज से छुप कर तो कभी समाज के प्रत्यक्ष के कर।।
साथियों यही विषय है आज चर्चा परिचर्चा का।

रूपेन्द्र राज तिवारी

अनुराधा सिंह की प्रतिक्रिया:
रूपेंद्र जी आपकी बात से सहमत हूँ और जो अब मैं कहने जा रही उसे आप सब कृपया स्त्री विमर्श के सीमित चौखटे में फिट करके न देखें। दूसरी औरत के पदार्पण के बाद लोगों का पहला काम होता है पुरुष को छोड़ दोनों स्त्रियों का तुलनात्मक अध्ययन, पहली पत्नी गँवार थी, कम पढ़ी लिखी थी, कुरूप थी और झगड़ालू थी सो बेचारे पुरुष को बाहर जाना पड़ा। सदियों की ट्रेनिंग और कंडीशनिंग ने हमें विवाह परंपरा में प्रतिबद्धता सिखा पायी है, उत्तर वैदिक काल से भारत में विवाह प्रथा अस्तित्व में आयी। पुरुष यानि की नर उसके पहले biologically अपनी संतति बढ़ाने के लिए स्वस्थ और युवा स्त्री की तरफ रुझान रखता ही है, भले ही इसका कारण वह स्वयं न समझे या पालन पोषण और संस्कार उसे एकपत्नीव्रत बना दें। यह innate व्यवहार है। स्त्री गर्भ और संतान की रक्षा के लिए एक तयशुदा क्षेत्र में रहती रही है। यह उसका अंदरूनी मसला है कि वह यदि विवाहेतर सम्बन्ध बनाती भी है तो प्रेम के वश। यानि कि गलत स्त्री वह होती है जो सामाजिक रीतियों से बाहर प्रेम करती है। इस प्रेम की शुरुआत भी बहुधा पुरुष की तरफ से होती है। वह अपनी पत्नी के देहातीपन, ख़राब स्वभाव आदि की दुहाई देकर इतनी सहानुभूति अर्जित करता है कि स्त्री को यह भरोसा हो जाता है कि मेरे बिना इस पुरुष का जीवन व्यर्थ है। इसके बाद भी यह नहीं भूलना चाहिए कि प्रेम, सम्बन्ध, लिव इन या विवाह जैसे मुद्दों का निर्णय पुरुष ही लेता है। कुछ सालों बाद अपने बच्चों के भविष्य की दुहाई देकर डंप कर देने का एकाधिकार भी उसी के पास है। स्त्री के हिस्से आता है सामाजिक तिरस्कार और एक असुरक्षित प्रेम सम्बन्ध। कई बार यह दूसरी स्त्री बाद में पाती है कि प्रेमी की पत्नी की न सिर्फ सामाजिक स्थिति बहुत सुदृढ़ है बल्कि उनका प्रेमी भी उसे सामाजिक तौर पर खासी तवज़्ज़ोह देता है। बहुधा इन स्त्रियों से पुरुष माँ बनने का हक़ भी छीन लेता है। अक्सर ये लड़कियाँ अवसाद और चिड़चिड़ेपन का शिकार हो जाती हैं।छली दोनों स्त्रियाँ जाती हैं बराबर लेकिन सहानुभूति एक को ही मिलती है। ऐसे कायर और खुदगर्ज़ पुरुषों का कोई नाम रखने का वक़्त आ गया है।

श्री राज हीरामन मॉरीशस से

परिचर्चा का विषय दिलचस्प के अलावा महत्वपूर्ण तो है पर साथ ही गहमा-गहमी भी है !इस के सिवाय यह जहाँ चर्चाओं में द्रौपदी काल से रही है यहाँ आज भी हमारे आसपास मौजूद है और न जाने भविष्य में भी कब तक रहने वाली है !शायद तब तक,जब तक स्त्री पानी का अपना सुखद तथा खुशहाली संसार छोड़ने पर विवश हो जाए और अपने को 'रेत की मछली'* बना ले तथा तड़प की आग में जीवन काट दे. युग चाहे धर्मयुग का हो !त्रेतायुग का हो !आज के मोडर्न युग का हो !पर हर युग में वह एक ही परिभाषा में संकुचित रही है.अपने अर्थों की दुनिया से वह अब कहाँ झाँसी की रानी बन पाने में सक्षम हो पा रही है ?

स्त्री को स्वयं तय करना है कि वह किन अर्थों में परिभाषित हो.वह किसी □मेरा मतलब सिर्फ पुरुषों से ही संकुचित नहीं है□के appraisal का या मूल्यांकन का मोहताज क्यों बनती जाए ?वह खुद निश्चय करे कि वह किन शब्दों मैं चित्रित होनी चाहिए. इतनी काबीलियत हासिल करे कि शब्द की कमी हो जाए और उन को कहने-बताने के लिए नए शब्द गढे जाएँ.मारगारेट ठाचर के लिए एक युगल शब्द का प्रयोग हुआ था " Bras de fer " French में है.Bras= हाथ de =the.fer=iron.झाँसी की वीरता को परिभाषित करना पड़ा तो उन्हें 'मर्दानी' कह कर सम्मानित किया गया.

यह बात घिस चुकी है कि हर सफल पुरुष के पीछे एक नारी है. इंदिरा □जो विध्वा थीं□वह अपने व्यक्तिव में अर्थवान बनीं पर पुरुष का माध्यम नहीं बनीं.पड़ोसी दुश्मन को पछाड़२ कर मारना भी मर्दाना था कि नहीं !!

स्त्री-विमर्श भी पुरानी घिसी-पीटी बात हो चली है.यह मुद्दों में बंद तो है ही पर स्त्री को कैद कर उस की क्षमताओं को कमजोर बना रहा है.इसी कारण वह सीमीतता का शिकार है. वह इस को अपना जकड़न न बनाए. इस से परे होकर अपने को परिभाषित करे और शब्दों के पीछे अपना वक्त ज़ाया न करे.सर खपाना ही हो तो वह अपने लिए शब्द-विन्यास, शब्द-निर्माण या शब्द-गढण करे.

अपनी एक विवादित क्षणिका से अपनी बात को खत्म करने की इज़ाज़त चाहूँगा :

*[illegible],*
*[illegible] !*
*[illegible]*
*[illegible],*
*[illegible],*
*[illegible] !!*

इस पर एक किस्सा याद आ रहा है ....
*धर्मवीर भारती की पहली पत्नी, कांता भारती की किताब 'रेत की मछली.'

'रेत की मछली' जब छपी तो बहुत कम समय में चर्चित हो गयी थी. टाईम्केस ऑफ इंडिया के विज्ञापन विभाग को कांता जी ने अपनी पुस्तक के विज्ञापन के लिए धर्मवीर भारती के संपादन में निकल रही

पत्रिका धर्मयुग को ही चुना और नेमचंद जैन (विज्ञापन मैनेजर) को पुस्तक भेज दी.भारती जी को पता चला तो वे बौखलाए और मेनेजर के दफ्तर पहुंच कर आग्रह किया कि यह विज्ञापन नहीं आना चाहिए. उन की यह बात मान ली गयी थी और मछली रेत में तैरती रह गयी थी !!!!

विषय को विस्तार देते हुए श्री विजय राठौर ने कहा,
संतोष जी ने सामाजिक संदर्भ में बहुत गंभीर विषय चर्चा के लिए चुना है।दूसरी औरत स्त्रियां स्वयं बनना पसंद करती है या बना दी जाती हैं यह प्रति प्रश्न भी पैदा होता है।करीना कपूर हो,स्मिता पाटिल हो,कांता या कोई भी दूसरी औरत क्या उन्हें पहले से पता नही होता कि वे जिससे जुड़ने जा रही हैं उनकापहले से परिवार है।दूसरी औरत बनने वाली औरतें प्रायः कुवांरी होती हैं, ऐसा क्यों है ?उन्हें पता होता है कि जिस प्रेमी पर वे अपना पूर्णाधिकार चाहती हैं उसपर पहले से ही उनकी पत्नी और बच्चों का अधिकार है।अधिकार का हनन तो ये दूसरी औरतें करती हैं फिर ये किस अधिकार के लिए जीवन भर लड़ती हैं ? ज्यादातर स्त्रियां जानबूझ कर दूसरी औरत क्यों बनती हैं ?इस मसले पर पुरुष के बराबर स्त्रियां भी दोषी हैं।

इस विषय को जीवंत बनाए रखते हुए अन्य लेखक-लेखिकाओँ की प्रतिक्रियाएँ भी लगातार आती रही….

[illegible]

पंकज परिमल

आपने बिलकुल सही फ़रमाया, स्त्री विमर्श एक थोथी चीज़ लगती है, सड़ी गली सी, बेहद पुरानी, जिसे ज़बरन कन्धे पर लादकर घूमा जा रहा है।आपकी बातों से कहने का बल मिला, मुझे तो महिला दिबस भी मुँह पर तमाचा लगता है।क्या महिला दिबस, तुम्हें पैदा करके, अब तुमसे साबित करवाना है कि साल में एक दिन महिला दिबस है, बाक़ी पूरे दिवस किसके हैं ?
सब कहीं तो हम ही हम हैं, माँ,बहन ,बेटी और बीवी बनकर, और तुम (सो कॉल्ड सोसाइटी) बता रहे हो कि 8 मार्च को महिला दिबस ।
सुरभि पाँडे

सुरभि जी की खरी-खरी अच्छी लगती है सच तो है गलती दोनों की पर बदनामी का ठीकरा महिला के सिर पर फोड़ दिया जाता है। सिर्फ साफ सुथरी दोस्ती हो तो वो भी हजम नहीं हो पाती लोगों को बहुत से नामी फ़िल्मकार अभिनेता अभिनेत्री साहित्यकार कवि दूसरी स्त्री की गिरफ्त में रहे हैं कई बार प्रसिद्धि के कारण झुकाव अनैतिक सम्बन्धों मे बदलकर विवाह के नाटक तक पहुँचता है पहली शादी की बलि लेकर सुहाग गीत गाए जाते हैं जैसे श्रीदेवी शिल्पा शेट्टी रानी मुखर्जी सहित कुछ मामले रमेश सिप्पी ने भी ऐसा ही किया था विवाह के बाद भी आम लोगों की सहानुभूति पूर्व पत्नियों के साथ रही इन्हे सम्मान नहीं मिल पाया इससे लगता है कि अभी भी एक एक पति पत्नी की व्यवस्था में आस्था बची हुई है बहुसंख्यक लोगों की एक बात और कहना चाहूँगी इस वर्ग में पैसे और प्रसिद्धि की

इतनी भरमार है कि समाज नैतिकता घर परिवार सब कुछ दोयम लगता है किसी की कोई परवाह नहीं. निम्न वर्ग में पैसा है ही नहीं अपमान का डर नहीं इसलिए ऐसे मामले खूब होते हैं
सिर्फ निम्न मध्यम वर्ग और मध्यम वर्ग कमोबेश अभी भी अपनी परंपरा और संस्कारों से जुड़ाव के कारण अपेक्षाकृत इन स्थितियों से कम ही दो चार होता है पर असर यहां भाइ शुरू तो जरूर हुआ है

रत्ना पाँडे

दूसरी औरत, या दूसरा आदमी ? आज ये शब्द ओछे से लगते हैं। कई महिलाओं के भी विवाहेतर सम्बन्ध होते हैं तो यहाँ पर दूसरा पुरुष हो गया। विवाह एक हमारा ही बनाया गया बंधन है वर्ना हम भी तो पशु ही थे और हैं।विवाह से स्थिरता मिल जाती है और एक अलग पहचान भी। लेकिन, ये दिलोदिमाग तो चंचल ही है। शबाना आज़मी, स्मिता जैसी हस्तियों ने अपनी खुशी से अपनाया दूसरे आदमी को और आज सम्मानित भी है। पिसता तो सिर्फ मध्यम वर्ग है जिसे सारे जहाँ की चिंता रहती है वर्ना अमीर और गरीब दोनों मस्त। वर्तमान में जबकि महिलाएं आगे बढ़ के ढेर सारी जिम्मेदारियों का निर्वहन कर रही हैं, हर क्षेत्र में सवा सेर हो रही हैं, ये सब बेमानी सा लगता है।

आज औरत बराबरी से खड़ी है, अपनी मर्जी से चल रही है। वो सिर्फ औरत है पहली या दूसरी नहीं।

ईरा पंत

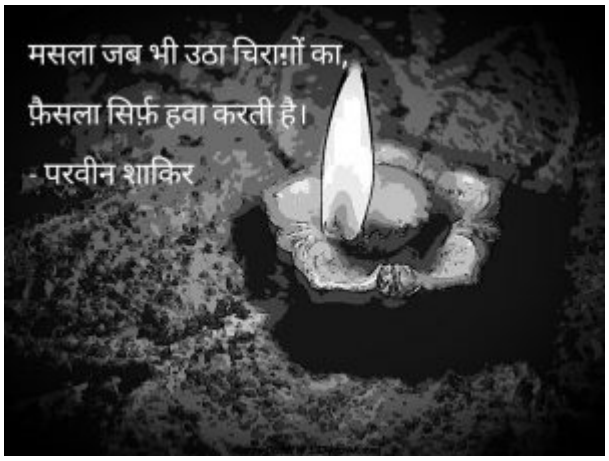


आज का विषय शानदार है। मै आरम्भ से ही स्त्री ,दलित आदि विमर्श का विरोधी हूँ।विमर्श हो तो मात्र मनुष्य का और मनुष्यता का उसके समक्ष उपस्थित चुनोतियों का ।स्त्री व् पुरूष अभिन्न है। ऋषियों ने सामाजिक व्यवस्था को बनाये रखने के लिए विवाह आदि संस्कारो की व्यवस्था की लेकिन वह बाध्यकर नही था ।क्योंकि विवाह सिमित नही थे हाँ आदर्श अवस्था में एक विवाह की परिकल्पना की थी ।दूसरी ,तीसरी या 4 औरत की बात बेमानी इस लिए है कि विवाह न केवल तन के प्रणय वरन भाव प्रणय का आधार था और भाव प्रणय की पूर्ति न होने पर व्यक्ति समभाव के विपरीत लिंगी की और आकर्षित होता ही है ।यहाँ यह स्पष्ट है कि इस चक्र को तोड़ने की शक्ति जितनी स्त्री की लगती है उतनी ही पुरुष की भी इस लिए समाज में गन्धर्व विवाह चलते रहे , बाद में रखैल का शब्द आ गया । समाज की व्यवस्था के लिए इसको हेय माना जाता था किंतु अस्वीकार्य नही ।आज के समय में जब भाव प्रणय की आवश्यकता व्यक्ति की मुखरता के साथ बड़ रही है यह सहज स्वीकार्यता की और बड़ रहा है ।

दुष्यंत दीक्षित

दुष्यन्त जी के विचार बहुत अच्छे सिर्फ मनुष्य की बात हो लिंग भेद क्यों इसलिए भी साधुवाद कि पुरुष अभी भी महिला को बराबर मानने में सकुचाते हैं। सही कहा आपने प्रणय के लिए तन ही नहीं मन का भाव भी जरूरी है पर आज इश्क तो इलायची की तरह हो गया बाँटते फिर रहे हैं। लिव इन रिलेशनशिप इसी अति आधुनिकता की उपज है

रत्ना पाँडे

संतोष जी आज सुबह ही आपका लेख पढ़ लिया था पर लिखने के लिए निश्चिंत होकर बैठना चाहती थी।

दूसरी औरत एक बहुत बड़ा सामाजिक मुद्दा हमारे समाज में इसलिए है क्योंकि अब तक हम प्रेम संतान को जायज़ संतान मानने में असक्षम रहे हैं। इसका एक कारण निरक्षरता और स्त्री का बुनियादी रूप से पुरुष पर निर्भर होना भी है। एक स्वतंत्र और आत्मनिर्भर स्त्री दूसरी औरत से ज्यादा सब ज़िम्मेदारियाँ खुद पर लेकर सिंगल मदर कहलाना पसंद करेगी। अब गलत व्यक्ति प्रेम हो जाने में उसका या प्रेम संतान का क्या दोष ? उन्हें किस कारण से समाज धुत्कारा जाता है ? अगर स्त्री की जगह पुरुष के ऊपर के ऊपर संतान बीज धारण करने और जन्म देने का ज़िम्मा होता तो जितनी "दूसरी औरतें" हैं उतने ही "पराए मर्द" भी स्पष्ट दिखाई देते। पर वर्तमान परिवेश में पुरुष का पल्ला झाड़कर अलग हो जाना आसान है और औरत हर तरह के लांछन सहने के लिए अकेली खड़ी रह जाती है। लिविन रिलेशन में संतान को जायज़ मान मिलता है पर वहाँ भी स्त्री के अधिकार की स्पष्टता नहीं।

कभी मजबूर से, कभी धोके से और कभी प्रेम में पड़कर स्त्री दूसरी औरत बन जाती है और एक तरह बहिष्कृत हो जाती है पर उसे दूसरी औरत बनाने वाला स्वच्छंद और नि:संकोच एक अपनी नई ज़िंदगी शुरु कर लेता है।

आशा सिंह गौर

प्रेम को पंथ करार महा तलवार की धार पे धावनो है।
सारी समस्याओं की जड़ है, प्रेम और सौंदर्य, अब सब कोई तो,संस्कारी, आदर्शवादी, और उच्च चरित्र के लोग नही हो सकते। और जिन्होंने प्रेम की तपन को महसूस किया है वही इस राह के राही है।अच्छा बुरा तो बाद में। आखिर इश्क तो इसी का नाम है। सबसे ज्यादा दुर्गति फिल्म वालों ने कर रखी है। फिल्मों का असर बहुत पड़ता है जी आम जनमानस पर और ये गीतकार तो और चिंगारी का काम करते है।

अँखियों के झरोखों से ,मैने देखा जो साँवरे
थोड़ी सी जान बची तो
चिंगारी अगर कोई भड़के
अब कर लो बात

दीवाने है, दीवानों को न घर चाहिए, न डर चाहिए, मुहब्बत भरी एक नज़र चाहिए
गुनाह किसका, जिम्मेदार कौन यह सब बात ख़ता हो जाने के बाद की बात ।कानून की जानकारी आज सबको है। 40 वर्ष पूर्व किसे क्या पता था ।
आज जागरूकता बढ़ गयी है ।अब इतना आसान नही रहा पहले जैसा कुछ भी ।दुनिया बदल रही है ।प्रेम करने वाला,पुरुष कौन होता है ।प्रेम शुध्द रूप से स्त्री का विषय है ।पुरुष पहल करता है स्त्री दान करती है,प्रेमदान ,सर्वस्व न्यौछावर।

असुंदर महिलाओ के साथ प्रेम कहानी कम ही सुनी है,नही के बराबर। दूसरी स्त्री के साथ रहना समाज में कौनसा अच्छा सन्देश देता है ।पर जो रह रहे है उन्होंने वह जोखिम अगर उठाया तो किस कीमत पर, क्या अपनी प्रेमिका का साथ नही निभाया क्या।

प्रेम कभी भी सही गलत नही देखता। माना कि हमारी सामाजिक मान्यताओं का हनन नही होना चाहिए,पर इक्का दुक्का लोगों का क्या असर होगा हंमारे समाज पर।

आज की लड़कियां ठोक बजाकर प्रेम, शादी सबकुछ करती है। आज सबकुछ बदल गया है। एक दो लोगो की कहानी का हंमारे सामाजिक ढाँचा पर कितना असर डालता है आप बतायें। बेमेल विवाह में बहुत सारे कुरूप पुरुषो के साथ सुन्दर महिलाओ की शादी देखी गयी है। कौन सी स्त्री कुरूप पति पसन्द करती है पर, निभाती है। कब उसने दूसरे पुरूष का वरण कर लिया। यह जीवन मिलता तो एक ही बार है, पर किसने विद्रोह कर दिया।
आनन्द बक्षी ने शायद इसीलिए लिखा
जी लिया मर लिया, प्रेम कर लिया

अमर त्रिपाठी

" औरत " तो सदैव से एक ही यानि पहली । बस दृष्टि दूसरी । इसी दूसरी दृष्टि ने उसे " दूसरी औरत " बना दिया। इस बात को इस प्रकार से भी कहा जा सकता है कि " औरत " तो सिर्फ " औरत " होती है ।दूसरी -तीसरी नहीं ।उसके हृदयसिन्धु में अनमोल रत्न – प्रेम, करुणा,ममता,दया, त्याग, समर्पण, स्वाभिमान कब दूसरे- तीसरे होते हैं ? उनका तो बस एक ही रूप सदैव से इसलिये " औरत " कभी " दूसरी औरत " नहीं …. " औरत " सिर्फ " औरत " है।
उर्मिला सिंह तोमर

'दूसरी ' शब्द कैसे आया ?
कृष्ण की राधा और गोपियों के साथ जो रास लीला या सम्बन्ध है , उसमे किसी को प्रायोरिटी नहीं है सब में बराबरी का दर्जा वैसे ही जैसे द्रोपदी के केस में पांच पांडव..
एक फिल्म देखि थी बाजीराव मस्तानी जिसमे काशी बाई मस्तानी से कहती है कि –तुम्हे लोग अप वस्त्र कहेंगे..
मस्तानी एक जगह कहती है — कि मुझे अपनाया है तो आपको छोड़ा भी तो नहीं..ये उम्दा बात है प्रेम के दृष्टिकोण से क्योंकि यहाँ स्टेटस की कोई अहमियत ही नहीं है ..सब एक पद पर आसीन ..
जहाँ तक बात है विवाह में जहाँ अपेक्षा है क्योंकि पूर्व निर्धारित अधिकार निश्चित किये गए

हैं..अधिकार शब्द ही विवाह की परिधि में आता है..सात फेरों में कई प्रतिज्ञा भी ली जाती है..समाज विवाह की परिधि के बाहर की प्रत्येक चीज को अय्याशी का ही नाम देता..
प्रेम में अपेक्षा नहीं होती..वो अधिकार वो अधिकार की बात नहीं करता ..उसमे आधिपत्य भी नहीं है ..
कहने का मतलब है दूसरी औरत के मायने अपने अनुसार भिन्न है : एक बात पुरुष का बेसिक चरित्र polygamous होता है जो गलत है ..स्त्री polyandry नहीं अपनाती इसलिए अपने सामाजिक अस्तित्व को बचाने के लिए अधिकारों की बात करती है जो सही है

शैली धूपे

आज का विषय और उस पर निरंतर हो रही चर्चा कुतूहल का विषय बनी रही। चूँकि मंगलवार को मैं मोबाइल फोन से थोड़ी दूरी बनाकर रखती हूँ परंतु आज मुझे सबके विचारों के सम्मोहन ने बांधे रखा। सच कहूँ तो अभी और पढ़ना चाहती हूँ मित्रों के विचारों को।वर्षा जी ने बड़ी खूबसूरती और सफाई के साथ अपनी बात को रखा।

संतोष जी के विचारों की गहराई को मापना अत्यंत रोचक प्रतीत हो रहा है।

हम सब कुछ भी कहें पर यह तो पृथ्वी पर कब से चला आ रहा है प्राचीन समय से राजा (पुरुष) अनेक रानियां रखता आया है ।स्त्री पुरुष के इस फैसले को सिर झुका कर कबूल करती आयी है ।संस्कार, मर्यादा, परम्परा जैसे अनेकों खोखले शब्दों से नारी को लाद दिया गया है।

हम सिर्फ पहली की संज्ञा उसे देते हैं जो अग्नि के समक्ष फेरे लगा कर समाज की प्रथाओं से सुसज्जित होकर पुरुष के जीवन में पदार्पण करती है ,परंतु ऐसा भी हो सकता है कि जिसे समाज पहली कहता हो वो दूसरी हो।

क्योंकि कुछ बंधन दिल से बंधते हैं और बहुत मजबूत होने पर भी किसी विवशता की वजह से छोड़ दिये जाते हैं लेकिन फिर कभी मौका पाते ही मनुष्य के अंदर उन्हें पाने की लालसा जागृत हो उठती है।

कई रिश्तों में इतनी अधिक घुटन होती है जिन्हें बस मजबूरी में निभाते निभाते मनुष्य ऊब जाता है।
रही बात लड़कियों की तो शायद वह विवाहित पुरुषों को इसलिए अधिक पसंद करती हैं क्योंकि उनके अंदर पैसे की ललक और चाह अधिक होती है
किसी यूनिवर्सिटी की शोध में जिसमें कहा गया था कि “कुंवारी लड़कियों की पहली पसंद शादीशुदा पुरुष होते हैं।
क्योंकि उन्हें ऐसे पुरुष विश्वासनीय लगते हैं।”

जबकि ठीक इसके उलट वह अपनी पहली पत्नी से विश्वासघात कर रहे होते हैं।

संगीत की दुनिया में अमिट छाप छोड़ जाने वाले किशोर कुमार की योगिता बाली के साथ तीसरी शादी थी। एक भारतीय टेनिस खिलाड़ी की पत्नी बन चुकी रिया पिल्ले ने संजय दत्त के साथ शादी रचाई, लेकिन यहां पर भी विवाह संबंध सफल न हुए और रिया ने संजय से अलग होकर एक टेनिस सितारे लिएंडर पेस से शादी कर ली।

आमिर खान ने 15 साल पुराना रिश्ता तोड़कर किरण राव से दूसरी शादी रचा ली, इतना ही नहीं, किरण आमिर खान से उम्र में बहुत छोटी हैं, लेकिन फिर भी उनको आमिर खान ही भाये क्योंकि नेम ,फेम और दौलत के पीछे जवानी दौड़ लगा रही है।

करिश्मा कपूर ने भी अभिषेक बच्चन जैसे कुंवारे लड़के को सगाई के बाद छोड़कर तलाकशुदा कारोबारी संजय कपूर से जीवन भर का नाता जोड़ लिया। और करीना ने भी विवाहित सैफ अली पसंद किया।शिल्पा, श्री देवी अनेकों उदाहरणों से भरा है समाज।

इसलिए सबकी देखा देखी 'दूसरी 'बनना स्त्री ने सहर्ष स्वीकार कर लिया है और पहली को बलि का बकरा बनने पर पुरुष द्वारा मजबूर किया जाता है। वास्तव में एक स्त्री के दुख का कारण दूसरी स्त्री होती है। और पुरुष भरपूर लाभ उठा रहे हैं ।।

मीना अरोरा

सारे दिन की व्यस्तताओं के बाद एक गम्भीर विषय पर नज़र पड़ी । बात शुरू करता हूँ, कहीं पढ़े हुए एक शेर से
*रहमतें दर पे आ के लौट जाती हैं, जिनके घर में बेटियाँ नहीं होतीं

इस तरह की पंक्तियाँ पढ़ने में जितनी अच्छी लगती हैं, वास्तविकता अभी भी कोसों दूर है । बात "दूसरी औरत" के विषय में हो रही है, किन्तु सच्चाई यह है कि "औरत" ही हमारे समाज में अपनी जगह तलाशती नज़र आ रही है। कुछ लोग मेरी बात का प्रतिकार करने के सबूत के रूप में कुछ नाम गिना सकते हैं, किन्तु मेरा सवाल इस समाज से इतना ही है कि ऐसे कितने नाम हैं ? सिर्फ़ भाषणों में और कहानियों में नारी पुरुष से कंधे से कंधा मिला कर चल रही है । नारी को पुरुष और औरत दोनों से बराबर ख़तरा है। भ्रूण के रूप में आने से ले कर जीवन की अंतिम साँस तक एक औरत ख़ौफ़ का जीवन जीती है । मुझे तो लगता है कि अगर प्रकृति ने औरत को स्वयं इतना सक्षम न बनाया होता तो इस धरती से मानव भी डायनासोर जैसे कल्पना की वस्तु बन गया होता।

मैं अपनी बातें भारतीय परिवेश को केन्द्र में रख कर सामने रख रहा हूँ।

विदेशी संस्कृति की जानकारी मुझे नहीं है, किन्तु हमारे देश में आज भी बच्ची के जन्म की ख़बर सुनकर अधिकांश परिवारों में मातम सा छा जाता है । बड़े बड़े परिवारों में और शिक्षित समाज में भी यह शोक देखा जा सकता है ।

मानव के अंदर का पिशाच कितना पुष्ट हो गया है कि ज़रा सा बच्ची घर के बाहर सुरक्षित नहीं है । हम किस समाज में जी रहे हैं, सोचिए तो घृणा होती है। क्या हम सब समवेत रूप से ज़िम्मेदार नहीं हैं, किसी औरत को "दूसरी औरत" बना देने के।

सिर्फ़ हक़ की बातें की जाती हैं, हक़ देते समय बड़े बड़ों के नक़ाब उतर जाते हैं ।

मैं एक उदाहरण देता हूँ। मेरे दो बच्चे हैं। एक बेटा, एक बेटी । मेरे कई मित्रों ने सलाह दी कि आप

बिटिया को बहुत प्यार करते हैं । इसका अर्थ यह नहीं कि मैं बेटे को कम प्यार करता हूँ , किन्तु बेटी को प्यार करता हूँ तो मोहल्ले को ज़ुकाम होता है।

यह उदाहरण देने का अर्थ सिर्फ़ यही है कि हम आज तक औरत को दोयम दर्जे से निकाल नहीं पाए हैं । स्थिति सुधर रही है, परन्तु जिस गति से सुधर रही है, उसको देख कर यह लगता है कि बदले हालात देखने के लिए एक जन्म नाकाफ़ी होगा ।
नज़र द्विवेदी

बहुत ही सटीक विषय है।लिव इन रिलेशनशिप आज की वो कड़वी सच्चाई है जिसका एक एक घूटँ पुरुष की चाटुकारिता छल प्रपंच औऱ झूठे वादो से भरा होता है । वह प्यार का ऐसा जाल बिछाता है कि औरत उसमे फँस ती चली जा ती है दूसरी औरत कहलाने दर्द उसे असहनीय पीड़ा देता है ।वह सम्मान से भी जा ती हैं अधिकारो से भी ।वह अपनी रँगरलिया मनाने के लिये पति का मुखोटा ओढ़ लेता है पत्नी (दूसरी औरत ) मात्र एक बिछोना है जिस पर वह अपनी रँगरलियाँ मनाता है और उस खूबसूरत बिस्तर को तो ड़ मरोड़ कर चल देता है। वह तो उसकी सिलवटे भी ठीक करने की जरूरत महसूस नही करता पुरुष प्रधान समाज मे ऐसे रिश्तों का दर्द औरत को ही झेलना पड़ता है ।
पूर्णिमा ढिल्लन

मुझे लगता है कि पुरातनपंथी, रखैल,जैसे शब्दों को त्याग दिया जाना चाहिए आज के सन्दर्भ में ….कोलख्यान जी और कस्तूरी जी की बात से सहमत हूँ कि हर स्त्री पहली ही होती है क्योंकि वो वो है उसका स्वयं का अस्तित्व है विवाह नामक संस्था ये सोचकर ही बनाई गई है कि हम पशुवत न हो जाएं ,एक तरह से सामाजिक नियंत्रण है ये । हम इस समय सामाजिक बदलाव की स्थिति में हैं एक तरफ विवाह संस्था पर विश्वास भी करते हैं दूसरी तरफ निर्वाह की भरपूर कोशिश भी। लेकिन ज़रूरी नही कि विवाह सफल ही हो ऐसा होता तो लव मैरेज करने वाले जीने मरने की दुहाई देने वाले एक दूसरे के दुश्मन न बन जाते । लीव इन में वर्षो रहने वाले भी बिखर न जाते। सारा खेल मानसिकता का है जीवन की आपाधापी में जिस साथी से मन को राहत मिले ,खुशी मिले वही सच्चा साथी है । दूसरी औरत दूसरा मर्द तो कहा ही न जाना चाहिए हाँ अगर किसी कारणवश किसी एक को त्याग ज्यादा भी करना पड़ रहा हो तो साथी को चाहिए उसकी मानसिक स्थिति स्वस्थ बनी रहे । दोनों ही एक दूसरे की भावनाओं और साथ से खुश हैं तो तकलीफ कैसी ?

ये भी अजीब विडम्बना है कि ज्यादातर एक महिला ही अन्य महिला को “दूसरी औरत” कह कर पुकारती है। कभी इस बात पे भी विचार होना चाहिए कि किस कारण सर किसी पुरुष की ज़िन्दगी में “दूसरी औरत” आती है और कभी चर्चा होगी तो सारी महिलायें एक सुर में “दैहिक सुख” जैसे शब्दों का उदाहरण देने लगेंगी पर हर बार ऐसा नहीं होता है।
राज रंजन

लेकिन, इस आत्म संयम को कई प्रवंचनाओ से डिगाने मे यह पुरुष समाज ही जिम्मेदार होता है। दूसरी औरत बने वह कभी नही चाहती ।दिमाग से वह हमेशा पुरुषों पर भारी पडी पर दिल के आगे हारी।इसी का फायदा ऊठा समाज ने उसे दोयम दर्जे मे रखा।सोची समझी साजिश की तरह है औरत की जिदंगी

संयम कानून अधिकार कर्तव्य कितनी वेदियो पर कुर्बान हो औरत जीती है मरती है घर बाहर परिवार समाज की संकल्पना मेअपना सर्वस्व न्योछावर करती है ।हरवक्त बुद्दिमता से चल सर्जनकरती है जरा साअपने सुख की सोचे तो उसकी परिभाषा क्यू बदल जाती है ??

प्राचीन काल से लेकर आज तक संघर्ष का कारण स्त्री रही यह सच हैपर क्या द्रौपदी की भरी सभा मे अपमान का जिम्मेवार पुरुष नही। ?वह चुप रह विष का घूट पी ले ।आज वहह सभा मे नही घर मे अपमानित हो रही है, हर तरह से सक्षम होते हुए ।

मीता अग्रवाल

जो बोल रहे हैं, जो चुप हैं जो मंच पर हाज़िर हैं गैरहाजिर हैं सबसे बड़ा सच यही है कि अस्सी प्रतिशत जोड़े वैवाहिक सम्बन्धों में त्याग कर रहे हैं , स्त्री हों या पुरुष किसी एक का अथाह त्याग समाज में विवाह संस्था की जड़ें बचाए हुए है । जब दोनों ही तरफ से सम्बन्ध असहनीय हो जाते हैं तब परिवार विलग हो जाता है लेकिन हमारी आधी आबादी अपने रिसते घावों को छुपाकर समाज को बता रही है कि ,सब ठीक है ।पति पत्नी समाज के सामने मुखौटा लगाए ही प्रकट होते हैं ,हम एक हैं ... दूसरी और दूसरा आने की गुंजाइश इसी लिए बढ़ गई है । एक तरफ से टूटी गाड़ी खींचने का दिखावा , दूसरी तरफ खींचा जा सके इसलिए बलवती होती ऊर्जा । लाखों में एक स्त्री अपने वजूद को बचाकर किनारा करती है जबकि पुरुष के लिए विकल्प और भी हैं ।ज़्यादातर स्त्री विवाह के बन्धन को पति के नाम , बच्चों , आर्थिक स्थिति और अकेलेपन में सामाजिक भय के कारण सहकर भी जुडी रहती हैं क्योंकि इससे वो असुक्षित नही दिखतीं समाज को और कमोबेश पुरुष भी परिवार के साथ ही दिखावे के रूप में ही जुड़ा रहता है। सच्चा प्रेम , सच्ची समझ , सच्ची सामंजस्यता मात्र दस बीस प्रतिशत लोगों में होती है इसलिए वे किसी ,और, से सम्बन्ध को नकार पाते हैं । जबकि विवाह नामक संस्था इसी प्रेमपूर्ण रवैये को सोचकर ही बनाई गई थी वो अब भी है पर अधिकांश दिखावा ..

वर्षा रावल

सांझ की बेला हो गई, सभी को संध्यानमन, इतिहास में स्त्री अवश्य पुरुषों के संघर्ष का कारण बनी पर हम आज की स्त्री की बात कर रहे हैं। और वह भी दूसरी औरत की, क्या होती है दूसरी औरत ?क्यों होती है दूसरी औरत ?या होती ही नहीं ?कई प्रश्न है, जीवन में साथी के होते हुये भी दूसरे की चाह क्यों ?
कई बार हमें जीवनसाथी के होते हुये भी ये क्यों लगने लगता है, हमारे विचारों को समझने वाला कोई नहीं, तब शायद दिल से दिल के तार जुड़ते हैं, जब एक दूसरे का औरा एक हो जाता है, पर संयम आवश्यक है, मन की हर बात पूरी नहीं की जा सकती, बचपन में हमारे गुरुजी कहते थे मन तुम्हारी नहीं सुनता तुम मन की न सुनो,हर बात पूरी करनी जरूरी नहीं

ज्योति गजभिये

दिल का मामला अलग होता है प्रेम उम्र ,सामाजिक बन्धनों से परे होता है। दूसरी औरत केवल अपनी मर्जी से नहीं आती । परिस्थितियां हालात भी दोषी होते हैं। प्रेमचंद ने दूसरा विवाह किया क्यों ?

मानसिक संतुष्टि के लिए प्रभा खैतान ने यह दुख आजन्म सहा, रेखा हो हेमा या श्रीदेवी नर्गिस हो कामिनी कौशल !!

रचना ग्रोवर

दूसरी औरत आज की ज्वलंत समस्याहै दूसरी औरत ।पहले भी यह समस्या थी पर आधुनिकता के दौर मे कुछ ज्यादा ही चलन बढ़ा है ।यूँ तो पुरूष रूप रसिया , लोभीऔर स्वार्थे से भरे माने जाते हैं पर अपवादस्वरूप कुछ स्त्रिया अति आधुनिक बनने की होड़ मे अपने मंहगे शौक पूरे करने की चाह मे कभी अपने पति से संतान न होने पर माँ बनने की चाह पर परपुरूष से अनैतिक संबंध स्थापित कर लेती हैऔर पुरूष तो मौकापरस्त होते ही हैं फिर बन जाती है दूसरी औरत जो धीरे- धीरे परपुरूष के साथ ही साथ उसके जमीन जायदाद पर हक जताने लग जाती है ।घर मे विरोध करने पर पत्नी होती है घरेलू हिंसा की शिकार और दूसरी औरत होती है सामाजिक प्रताड़ना की शिकार ।पुरुष के तो सात खून माफ ही होते हैं ।

खेल किसी भी तरह बंद नहींहोता। जिसका परिणाम भुगतते हैं बच्चे ।अत: मेरे विचार मे स्त्री पुरूष दोनों मे ही आत्म संयम,आत्म नियंत्रण और आत्मानुशासन कीआवश्यकता है क्योंकि ताली एक हाथ से तो नही बजती।

गीता भट्टाचार्य

यही हमारी संस्कृति की मूल धारणा है कि स्त्री पुरुष जीवन रथ के दो समान ताकतवर पहिये हैं। स्त्री को समानता का अधिकार पाने का हक है और होना ही चाहिए।स्त्री बिना कोई घर,घर हो ही नही सकता।यह जो दूसरी औरत पर बहस जारी है यह समाज में कितने प्रतिशत घर में है, नगण्य है और जो है उसके लिए दोनों समान रुप से दोषी हैं। मुझे इस प्रश्न का जवाब अब तक नही मिला कि दसरी औरत बनने वाली ज्यादा तर औरतें अविवाहित क्यों होती हैं जबकि उन्हें पता होता है कि वह जिसकी दूसरी औरत बन रही है वह पहले से ही बाल बच्चेदार है।
विजय राठौर

सम्माननीय संतोष जी ने जो गम्भीर विषय चर्चा के लिए दिया है वो आज के परिपेक्ष्य में बेहद जरूरी है। सुना है श्री राम ने एक पत्नी व्रत की नींव उदाहरण स्वरूप समाज में मज़बूती से रखी और हिन्दुस्तान में उसके बाद ही पुरूष के दूसरे शारीरिक सम्बन्ध को दूसरी ओरत का दर्जा मिला ।समाज में ऐसी महिला को तिरस्कार की नज़र से देखा जाने लगा और उसके बच्चो को तो गाली से ही संबोधित किया गया ! वो टुकड़ों में पली ,रोती बिलखती,अपने मर्द को पति मानते हुए उसके आंगन की तुलसी बनी रही और त्यागमूर्ती बन ऐसे ही मर गई ! आज की महिला फिर से वह पौराणिक महिला होने का दम भरती है ,जो निडर है ! समाज के ठेकेदारों की जवाब देह नहीं ! समाज के नियमित संचालन हेतू कानून " दूसरी ";महिला को कोई मानयता भले ही न दे पर उसके और उसके बच्चों की देख रेख व सम्पत्ति में हिस्सा उस पुरूष की कानूनन जिम्मेदारी करार करती है ! फिर भी अगर कोई महिला किसी पुरूष की दूसरी जीवनसाथी बनती है तो उसे बहुत दिलेर होकर समाज में सिर ऊँचा करके चलना होता है चाहे वह शबाना हो या हेमा ! समाज पैसे और रूतबे को पूजता है जो दिलेर हो, धनवान हो ,उसके

सामने कोई कुछ नहीं कहता पर जो मूक टेसू बहाए,मजबूरी जताए वो बहिष्कार और प्रताणना सहे ! इस विडंबना को अब खत्म करना होगा यही मेरी अल्प बुद्धि का मानना है

वन्या जोशी

यह सामाजिक बुराई के रूप में देखा जाने वाला कटु सत्य है, माना कि स्त्री और पुरुष दोनों ही आज स्वच्छंद विचार को समर्थन देते है पर जब पर स्त्री या फिर पर पुरुष की बात हो तो वे मानसिक रूप से इस रिश्ते को कभी भी स्वीकारते नही, आज समाज का नियंत्रण कमजोर हो गया है या फिर सर्विस के लिए महिला या पुरुष का परिवार से दूर रहना ,ऐसे रिधतो को बढ़ावा देते है पहले विवाहोपरांत भी सभी अपने बड़ो के साथ संयुक्त परिवार में रहते थे और इस वैवाहिक रिश्ते का मान करते थे आज आधुनिकता के नाम पर सभी अपने अधिकारो के प्रति ज्यादा ही सचेत है ,जिससे हमें अपने आसपास कितने ही ऐसे रिश्ते दिख जाते है ,जो कही मजबूरी में ढोते या फिर आधुनिकता के नाम पर सिर्फ दिखावा मात्र प्रतीत होते है।
वृंदा पंचभाई

आज का विषय अपने आप मै अपना वजूद लिये है इस पर जितना कहॉ जाये जितनी व्याख्या की जाये कम है सदियो से हर युग मै या हर काल में नारी को ही हर बात का केन्द् बनाया गया है नारी जो करे वो अमान्य है पुरूष जो करे वो मान्य है। संसार मै सिर्फ दो ही प्राणी है एक नर दूसरा नारी विषय वस्तु के देखते हुए यह कहना कि दूसरी औरत तो यह दुसरी औरत का लेबल केवल स्त्री पर ही क्यूँ ? यही बात हम दूसरा पुरूष या दूसरा मर्द कह कर सम्बोधित करे तो क्या अतिश्येक्ति होगी हर बार औरत को ही क्यू बदनाम करना
क्या उसे स्वेच्छा से जीने का अधिकार नहीं, हम बीते समय की नही आज की नारी की बात कर रहे हैं। आज की नारी ने अपने वजूद को समझने व बनाने मै कोई कसर नही छोडी
हम अनेको बार यह सुनते है कि फला औरत फला आदमी की रखैल है उसका का किसी के साथ नाजायज सम्बंध हैं। पर ये कोई नही कहता फला मर्द फला औरत का रखैल है आखिर क्यों.... ये नारी के लिये ही कहा जाता है।

और एक बात
कि ये कहा जाता है कि फलाँ औरत ने अपनी तरक्की अपना नाम करने शौहरत के लिये दौलत के लिये फला आदमी को फसाया या उसका फायदा उठाया तो क्या यही बात हम इसके विपरीत नही कह सकते फिर हर बार नारी पर ही क्यों प्रत्यारोपण ? हम कहेगे कि स्वार्थी होना एक हद तक बुरा नही है अगर पुरूष अपनी हर इच्छा पूरी करता है तो नारी क्यूँ ना करें, और ताली एक हाथ से नही बजती है। दोनों एक दूसरे के पूरक है और हम सब जानते समझते है कि दोनो को दोनो की जरूरत है। और सबसे बडी जरूरत या कमजोरी सेक्स है इसके बिना दोनो का जीना एक हद तक नामुकिन है। हाँ स्त्री एक हद तक सयंम रख सकती है पर पुरूष पुरूष अति सम्वेदनशील प्राणी है। वो किसी औरत के छूने मात्र से ही विचलित हो जाता है उसमे संयमशीलता ना के बराबर है।

प्रियंका सोनी

संतोष जी ने “ दूसरी औरत” के विषय को पटल पर रखकर समाज की बनावट की परतें खोलने का रचनात्मक कर्म किया है … जितनी भी परिभाषाएं .. मान्यताएं .. “ दूसरी औरत” को दी जाती हैं ..दरअसल वो सभी “पितृसत्तात्मक” यानी पुरुष की बनाई धारणाएं हैं .. जो सामाजिक मान्यताएं बनकर आज भी प्रचलित हैं .. क्यों प्रचलित हैं ये आप सब विद्वान जानते हैं क्योंकि ‘ये पुरुषों का .. पुरुषों के लिए .. पुरुषों द्वारा बनाया समाज है’ औरत आज भी मात्र तमाशबीन है ..या “पितृसत्तात्मक” व्यवस्थता की वाहक है ..तभी तो बड़े आराम से “औरत .औरत की दुश्मन है” का हास्यास्पद जुमला स्वीकारती है .. मानती है .. और उसको ढोती है ..कभी पलट के नहीं पूछती .. युद्ध करे पुरुष .. और दोष महिला का … लगाव होना ..चाहत ..एक मानवीय जरूरत है पर समाज ने वस्त्र धारण करके अपने को सभ्य तो बना लिया ..पर जितना उसने अपना तन ढका उतना उसकी इंसानियत “नगीं” हो गयी ..इसलिए आज तकनीक का विकास होने के बावजूद वो पिछड़ा है क्योंकि उसका चिंतन विकसित नहीं हुआ … आज का विषय ये आईना दिखाता है की साहित्यकारों में दम हो तो ‘ये पुरुषों का .. पुरुषों के लिए .. पुरुषों द्वारा बनाया समाज है’ को तोडें और अपने आप को दकियानूसी संस्कारों से मुक्त करें ..संस्कृति के ढकोसलों से बाहर निकलें .. और इंसानियत की नज़र से सम्बन्धों को देखें तो ..पवित्रता नज़र आएगी .. सार्थकता को जी पायेगें .. पाप ..पुण्य के जाल से निकलेंगें .. तो साफ़ दिखेगा ..वो पहली और दूसरी नहीं होती ..वो ‘इंसान’ होती है ..और वाकई ‘इन्सान ही ‘सभ्य’ समाज की पराकाष्ठा का मापदंड है !संतोष जी को साहसी पहल के लिए बधाई –

मंजुल भारद्वाज

परिचर्चा का समापन संतोष श्रीवास्तव के इस वक्तव्य से हुआ
शुक्रिया सुरभि जी और अन्य सभी साथियों का…..
हर व्यक्ति को चाहे वह स्त्री हो या पुरुष अपने तरीके से अपनी जिंदगी जीने का हक है लेकिन चूंकि हम सामाजिक प्राणी है इसलिए सामाजिक मान प्रतिष्ठा भी जरुरी है। लेकिन सच्चाई तो यह है कि व्यवस्था, नैतिकता, मर्यादा और कर्तव्य के दायरे में कैद स्त्री खुलकर सांस नहीं ले पा रही है।

इस चर्चा से बहुत से पक्ष सामने आए। हमें सोचना यह है स्त्री पुरुष दोनों को कि हम परिस्थिति जन्य समझौते को जीने की मजबूरी मान लें या सब कुछ को नकार कर खुलकर अपनी तरह से जिएं क्योंकि “जिंदगी न मिलेगी दोबारा”

दोस्तों, आपने अपना कीमती वक्त देकर मेरे विषय को जो अहमियत दी है उसके लिए शुक्रगुजार हूं ।

[illegible]